# भारत–अमेरिका संबंध (1947–1957)

दीपक कुमार
शोध छात्र
इतिहास विभाग
बी.आर.ए.बिहार विष्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारत का अमेरिका के साथ कोई विषेष सम्पर्क नहीं था। इसका प्रथम प्रमुख कारण दोनों राज्यों के मध्य की दूरी और सुगम संचार माध्यमों का अभाव माना जा सकता है। दूसरे उपनिवेषवादी ब्रिटिष सरकार द्वारा ऐसी नीति का अवलंबन किया जा रहा था जिससे भारतीय अन्य राज्यों के संपर्क में न आ सके। तीसरे द्वितीय विष्वयुद्ध से पहले तक संयुक्त राज्य अमेरिका भी विष्व राजनीति में पार्थक्यवादी नीति कर रहा है। यह मूलतः मुनरो सिद्धांत पर आधारित था। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन ने जब वर्साय की संधि को अनुमोदन के लिए अमेरिकी सीनेट ने उसे अस्वीकार कर दिया और अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बन सका। यद्यपि अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन उसके प्रणेता थे। इस क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि अमेरिका बीसवीं सदी के मध्य तक चीन और जापान को छोड़कर किसी अन्य एषियाई राज्य के मामले में अभिरूचि नहीं ले रहा था। इसी प्रकार अमेरिकी एवं ब्रिटिष अप्रवास नियम प्रत्यक्ष रूप में भारत विरोधी थे।

भारत को 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली और भारत का अमेरिका के साथ औपचारिक राजनायिक संबंध स्थापित हुआ। लेकिन इन दोनों राज्यों के संबंधों का अतीत प्राचीन है। यदि अति–प्राचीन काल की बातों पर ध्यान नहीं भी दिया जाए तो इन दोनों राज्यों के मध्य अनौपचारिक संबंध की स्थापना का इतिहास भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के समय से माना जा सकता है। कुछ भारतीय क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों के विरूद्ध अपनी गतिविधियाँ अमेरिका में संचालित की थी। इतना ही नहीं द्वितीय विष्वयुद्ध के समय यदा–कदा ब्रिटेन पर इस बात के लिए दबाव भी डालता रहा कि वह भारत की स्वतंत्रता की घोषणा कर दे यद्यपिइ स प्रकार की अमेरिकी दबाव को ब्रिटेन अच्छी भावना से नहीं देखता था।[1]

लेकिन युद्धोत्तर काल में ब्रिटेन की श्रमिक दल की सरकार द्वारा भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने का निर्णय लिया गया। 15 अगस्त को भारत को आजादी प्रदान की गई। लेकिन इस आजादी की कीमत भारत को विभाजन के रूप में चुकानी पड़ी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत और अमेरिका के बीच राजनायिक संबंधों का श्रीगणेष हुआ और दोनों देषों के बीच राजदूतों का आदान–प्रदान हुआ। इस प्रकार विष्व के दो गणतांत्रिक राज्यों के बीच औपचारिक संबंधों का श्रीगणेष हुआ।

इसी क्रम में यह उल्लेखनीय है कि जिस समय भारत को आजादी प्राप्त हुई उस समय अंर्तराष्ट्रीय जगत में शीतयुद्ध का काल प्रारंभ हो चुका था। विष्व दो गुटों में विभाजित हो चुका था। पष्चिमी गुट का नेतृत्व अमेरिका कर रहा था जबकि सोवियत संघ समाजवादी राज्यों के गुटों का नेतृत्व कर रहा था। विष्व के अधिकांष राज्य इन दो गुटों में विभक्त हो चुका था। दोनों गुट एक–दूसरे के विरूद्ध मिथ्या प्रचार, सैनिक गठबंधन, अस्त्र–षस्त्रों की होड़ में संलग्न थे। अंर्तराष्ट्रीय धरातल पर तनाव का वातावरण कायम था। इस प्रकार की बड़ी शक्तियों की शक्ति राजनीति के नवीन परिवेष में भारत–अमेरिका के संपर्क में आया। भारत अथवा विष्व के अधिकांष राज्य इस प्रकार की राजनीतिक–षक्ति से अनभिज्ञ थे।

इस प्रकार अंर्तराष्ट्रीय राजनीति का यह वह काल था जिसमें अमेरिका एषियाई नीति का मुख्य उद्देष्य भारत एवं चीन[2] यानि राष्ट्रवादी सरकार की सहभागिता द्वारा अपने हितों में अभिवृद्धि चाहता था। अमेरिका यह चाहता था कि भारत अमेरिका शक्ति गुट में शामिल हो। लेकिन भारत ने विष्व में वर्तमान के किसी भी शक्ति गुट में शामिल नहीं होने का निर्णय लिया था। इस तथ्य को अंतरिम सरकार के प्रधान होने के रूप में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 7 सितम्बर 1946 ई. को विदेष मंत्रालय का कार्यभार संभालने के साथ ही स्पष्ट कर दिया था। उन्होंने स्पष्ट किया कि हम यह प्रस्तावित करते हैं कि यथासंभव समूहों की शक्ति राजनीति से जो एक–दूसरे के विरूद्ध संगठित हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप दो विष्वयुद्ध हुए हैं और यह संभव है कि भविष्य में इससे भी विनाषकारी स्थिति उत्पन्न हो, उससे अपने आप को अलग रखेंगे।[3]

पंडित नेहरू ने अपने वक्तव्यों में बार–बार इस बात पर बल दिया कि भारत शीतयुद्ध के इस काल में गठित परस्पर दोनों प्रतिस्पर्द्धी गुटों में से किसी में शामिल नहीं होगा। जैसे उन्होंने 4 दिसम्बर 1947 को संविधान सभा में स्पष्ट किया कि ''हमने विदेषी उलझनों से यथासंभव अपने आप को अलग रखने के उद्देष्य से किसी भी गुटबंदी में शामिल नहीं होने का निर्णय लिया है। परिणामस्वरूप कोई भी शक्ति अथवा गुट हमारे तरफ मुखातिब नहीं है। वे सोचते हैं कि भारत एक ऐसा राज्य है जिस पर इस बात के लिए विष्वास नहीं किया जा सकता है कि वह किस गुट के साथ मतदान करेगा।[4] इसके बाद भी कुछ समय तक अमेरिका अपने गुट में सम्मिलित होने के लिए दबाव डालता रहा कि वह उसके गुट में शामिल हो जाय।

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की 1946–47 के बैठक में भारत ने प्रमुख अंर्तराष्ट्रीय मुद्दों पर जिस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया उससे अमेरिका यह सोचने को बाध्य हो गया कि भारत का झुकाव कुछ हद तक सोवियत संघ के प्रति है।[5] अतः स्वाभाविक तौर पर अमेरिका का दृष्टिकोण भारत विरोधी प्रतीत होने लगा। लेकिन इसके बाद भारत द्वारा ऐसे कुछ कदम उठाये गये जिससे अमेरिका की सोच में कुछ परिवर्तन आता हुआ प्रतीत हुआ। अतः दोनो राज्यों के संबंधों में कुछ सुधार एवं परिवर्तन के चिन्ह दिखाई देने लगे। जैसे भारत ने राष्ट्रमंडल संघ में बने रहने का निर्णय लिया।[6] इस क्रम में उल्लेखनीय है कि राष्ट्रमंडल संघ का पहले नाम ब्रिटिष राष्ट्रमंडल संघ था। जब भारत के रूप में एक गणराज्य ने इसकी सदस्यता ग्रहण करने का निर्णय लिया तो इसके नाम से ब्रिटिष शब्द हटाकर इसका नाम राष्ट्रमंडल संघ कर दिया गया और आज भी यह इसी नाम से जाना जाता है।[7] इसी प्रकार भारतीय साम्यवादियों के तेलंगाना के कुचलने के लिए जिस प्रकार का कठोर कदम उठाया गया और भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा के अंतर्गत 'लिटिल एसेम्बली' की व्यवस्था का भी समर्थन किया। इसके अंतर्गत आवष्यकता पड़ने पर महासभा का अधिवेषन सत्रावसान के बाद भी अविलम्ब बुलाने की व्यवस्था की गई थी। इस प्रस्ताव के समर्थक पष्चिमी गुट के राज्य थे क्योंकि उस समय महासभा में उनका स्पष्ट बहुमत कायम था। भारत द्वारा उठाये गये इन कदमों के कारण ही तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने उत्साहपूर्वक भारतीय प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को अमेरिका की यात्रा का आमंत्रण दिया। पंडति जवाहरलाल नेहरू ने अकटूबर 1949 ई. में अमेरिका की यात्रा की। भारत के प्रधानमंत्री के रूप में उनकी यह पहली अमेरिका की यात्रा थी। अमेरिका में उनका भव्य स्वागत किया गया। नेहरू की इस यात्रा के समय अमेरिकी प्रषासन द्वारा भारत के साथ विषिष्ट संबंधों की स्थापना का भरसक प्रयास किया गया।[8]

लेकिन पंडति जवाहरलाल नेहरू द्वारा विभिन्न अंर्तराष्ट्रीय मुद्दों पर जिस प्रकार का स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया गया उससे निष्चय ही अमेरिका को निराषा हुई होगी। उस समय डीन एजेसंन अमेरिका के विदेष सचिव थे। उस समय अमेरिका यह योजना बना रहा था कि साम्यवादी चीन को मान्यता देने के प्रष्न पर गैर–साम्यवादी राज्यों द्वारा एक सामूहिक कदम उठाया जाय। लेकिन पंडित नेहरू ने अपने मेजबान को यह स्पष्ट कर दिया कि भारत चीन की साम्यवादी व्यवस्था को मान्यता देने का पहले ही निर्णय ले चुका है। इस क्रम में उल्लेखनीय है कि चीन में उस समय तक साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना हो चुकी थी और बर्मा

के बाद गैर–साम्यवादी राज्यों में चीन को मान्यता प्रदान करने वाला भारत दूसरा राज्य था। इतना ही नहीं पंडित नेहरू ने इंडोनेषिया एवं हिन्द चीन के संदर्भ में अमेरिकी नीति के औचित्य पर भी प्रष्न चिन्ह उपस्थित किया।[9]

दूसरी तरफ अमेरिका का प्रषंसक भारत की विदेष नीति के कुछ प्रमुख सिद्धांतों को नहीं मानता था। जैसे, उपनिवेषवाद का विरोध, जाति–भेद की नीति का विरोध और सबसे अधिक शीतयुद्ध से परे रहना। क्योंकि अमेरिकी दृष्टि में शीतयुद्ध के परिवेष में किसी भी राज्य को इससे अपने आप को अलग रखना संभव नहीं था। इस प्रकार भारत एवं अमेरिका के मध्य पहली बार जो औपचारिक अंतःक्रिया हुई उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों राज्यों के दृष्टिकोण विष्व के कुछ प्रमुख मुद्दों पर ऐसे हैं जिनका समायोजन नहीं हो सकता है।

जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उसी समय से अमेरिका को यह आषा थी कि भारत और राष्ट्रवादी चीन एषिया में प्रमुख स्थान प्राप्त करने में सफल होंगे और साम्यवाद के विस्तार में तथा अमेरिकी हितों की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेंगे। लेकिन 1949 ई. में चीन में साम्यवादी शासन व्यवस्था की स्थापना के बाद अमेरिका की एषियाई नीति में भारत का और भी महत्वपूर्ण स्थान हो गया। नवीन अमेरिकी योजना के अंतर्गत भारत एषिया का एक प्रमुख राष्ट्र होगा और वह अमेरिका का एक मित्र राष्ट्र होगा जो साम्यवाद के विस्तार को रोकने में उसके कंधे से कंधा मिलाकर कार्यरत होगा।[10]

लेकिन अमेरिका द्वारा इस दिषा में लगातार किया गया प्रयास सफल नहीं हो सका कि भारत उसके गुट में शामिल हो जाय और भारत बड़ी शक्तियों की राजनीति में अपनी असंलग्नता की नीति के आधार पर कार्यरत रहा। फिर भी कोरिया संकट में उत्तर–कोरिया को आक्रमणकारी घोषित करने की भारत की नीति अमेरिका और उसके गुट के अनुरूप था। लेकिन इसे भारतीय नीति में कोई परिवर्तन का सूचक नहीं माना जा सकता था। भारत ने कोरिया संकट के समाधान के लिए जो प्रस्ताव उपस्थित किया वह अमेरिकी हितों के अनुरूप था। 1950 ई. में आते–आते अमेरिका को यह स्पष्ट हो गया कि भारत असंलग्नता की अपनी स्वतंत्र नीति का अवलंबन जारी रखेगा। दूसरी तरफ अमेरिका समूचे विष्व में अपना वर्चस्व स्थापित करने की नीति का अवलंबन करता रहा। भारत से निराष होकर अमेरिका एषिया के अन्य छोटे राज्यों की तरफ मुड़ा जो सोवियत सघ की सीमा रेखा के करीब थे और जिन्हें साम्यवादी चीन और भारत दोनों से ही समान रूप से भय था जैसे–थाइलैंड, पाकिस्तान।[11]

## संदर्भ सूची :–


1. जेड. ए. भुट्टो, द मिथ ऑफ इंडिपेंडेंस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1969, पृ. 35
2. उस समय तक चीन में साम्यवादी शासन व्यवस्था की स्थापना नहीं हुई थी और वहाँ च्यांगकाई शेख के नेतृत्व में राष्ट्रवादी सरकार कायम थी।
3. जवाहरलाल नेहरू, इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, सेलेक्टेड स्पीचेज सितम्बर 1946, अप्रैल 1961, पब्लिकेषन डिविजन, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1961, पृ. 2
4. के. पी. करूणाकरण द्वारा उद्धृत, इंडिया इन वर्ल्ड एफेयर्स, फरवरी 1950–दिसम्बर 1953, पृ. 238–239
5. देव नारायण मल्लिक, पोस्टवार इंटरनेषनल पॉलिटिक्स, वीणा मंदिर प्रकाषन, मुजफ्फरपुर, पृ. 415
6. करूणाकरण, पूर्वोक्त, पृ. 328

7. वही, पृ. 238
8. डीन एचेन्सन, प्रजेन्ट एट द क्रिएसनः माई ईयर्स इन द स्टेट डिपार्अमेंट, न्यूयार्क, 1969, पृ. 334–336
9. एवी एच. डॉक्टर, एसेज ऑन इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, नेषनल पब्लिषिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977, पृ. 68–69
10. वही
11. वही